श्री श्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत

श्रीचैतन्य-चरितामृत

आदि लीला, प्रथम खण्ड

अध्याय 1-7

मूल बंगला श्लोक, श्लोक का हिन्दी लिप्यन्तरण,

शब्दार्थ, अनुवाद तथा विस्तृत तात्पर्य सहित

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

विषय-सूची

प्रस्तावना

भूमिका

परिचय

अध्याय एक

गुरुवर्ग

अध्याय दो

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु

अध्याय तीन

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्राकट्य के बाह्य कारण

अध्याय चार

श्री चैतन्य महाप्रभु के प्राकट्य के गुह्य कारण

अध्याय पाँच

भगवान् नित्यानन्द बलराम की महिमाएँ।

अध्याय छह

श्रीअद्वैत आचार्य की महिमाएँ

अध्याय सात

भगवान् चैतन्य के पाँच स्वरूप

परिशिष्ट

लेखक परिचय

सन्दर्भ

विशेष शब्दावली

श्लोकानुक्रमणिका

उधृत श्लोकों की अनुक्रमणिका

बांग्ला वर्णमाला

बांग्ला उच्चारण सम्बन्धी निर्देश

प्रस्तावना

यहाँ पर प्रस्तुत की गई भगवान् चैतन्य की शिक्षाओं एवं भगवद्गीता में दी गई भगवान् कृष्ण की शिक्षाओं में कोई अन्तर नहीं है। भगवान् चैतन्य की शिक्षाएँ भगवान् कृष्ण की शिक्षाओं के व्यावहारिक प्रदर्शन हैं। भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण का अन्तिम उपदेश यह है कि हर व्यक्ति को उन्हीं भगवान् कृष्ण की शरण ग्रहण करनी चाहिए। भगवान् कृष्ण ऐसे शरणागत को वचन देते हैं कि वे तुरन्त उसका दायित्व अपने ऊपर ले लेंगे। अपने पूर्ण विस्तार, क्षीरोदकशायी विष्णु के माध्यम से पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् इस सृष्टि का पालन करने के लिए पहले से ही उत्तरदायी हैं, लेकिन यह पालन अप्रत्यक्ष रूप से होता है। किन्तु जब भगवान् कहते हैं कि वे अपने शुद्ध भक्तों का दायित्व अपने ऊपर लेते हैं, तब वे वास्तव में प्रत्यक्ष रूप से ऐसा करते हैं। शुद्ध भक्त वह आत्मा है जो सदा-सदा के लिए भगवान् के शरणागत होता है, जिस प्रकार एक शिशु अपने माता-पिता को शरणागत होता है या एक पशु अपने मालिक को। शरणागति में मनुष्य को (1) भक्ति सम्पन्न करने के लिए अनुकूल वस्तुओं को ग्रहण करना चाहिए, (2) प्रतिकूल वस्तुओं का त्याग कर देना चाहिए, (3) भगवान् के संरक्षण पर दृढ़ विश्वास रखना चाहिए, (4) एकमात्र भगवान् की कृपा पर आश्रित रहना चाहिए, (5) भगवान् की इच्छा से पृथक् कोई इच्छा नहीं करनी चाहिए तथा (6) अपने आपको सदैव विनीत एवं दीन समझना चाहिए।

भगवान् चाहते हैं कि मनुष्य इन छह निर्देशों का पालन करते हुए उनकी शरण में आये, किन्तु संसार के अज्ञानी तथाकथित विद्वान इन निर्देशों को ठीक से समझ नहीं पाते और जनता को प्रेरित करते हैं कि वे इनका बहिष्कार करें। भगवद्गीता के नवें अध्याय के अन्त में भगवान् कृष्ण

प्रत्यक्ष आदेश देते हैं, “अपने मन को सदा मेरे चिन्तन में लगाओ, मेरे भक्त बनो, केवल मुझे नमस्कार करो और केवल मेरी पूजा करो। इस तरह मुझमें तल्लीन होने पर तुम निश्चित रूप से मुझे मेरे दिव्य धाम में प्राप्त कर सकोगे।” (भगवद्गीता 9.34) किन्तु ये आसुरी विद्वान जनता को भगवान् की शरण में न ले जाकर उसे निर्विशेष, अव्यक्त, नित्य, अजन्मा सत्य की ओर जाने के लिए भ्रमित करते हैं। निर्विशेष मायावादी विचारक यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि परम सत्य का आखरी लक्षण यह है कि वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। यदि कोई सूर्य को यथारूप में जानना चाहता है, तो पहले उसे सूर्य की धूप का अनुभव करना होगा, फिर सूर्य ग्रह का और फिर यदि वह इस ग्रह में प्रविष्ट होने के लिए शक्तिमान बनता है, तो वह सूर्य के अधिष्ठाता देव को आमने-सामने देखने का सुअवसर प्राप्त कर सकता है। ये मायावादी विचारक अल्पज्ञान के कारण ब्रह्मतेज से आगे नहीं जा पाते, जिसकी तुलना सूर्य की धूप से की जा सकती है। उपनिषदों में इसकी पुष्टि की गई है कि भगवान् के असली मुख का दर्शन करने के लिए मनुष्य को ब्रह्म के जाज्वल्यमान तेज को भेदना होगा।

इसीलिए भगवान् चैतन्य व्रजराज के पोष्य पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष पूजा की शिक्षा देते हैं। वे यह भी सिखाते हैं कि वृन्दावन नामक स्थान भगवान् कृष्ण के समान ही है, क्योंकि भगवान् कृष्ण परम सत्य होने के कारण उनके नाम, गुण, रूप, लीला, पार्षद तथा साज-सामग्री और स्वयं कृष्ण में कोई भेद नहीं है। भगवान् की यही परम प्रकृति है। भगवान् चैतन्य यह भी सीखलाते हैं कि पूर्णता के सर्वोच्च स्तर पर पूजा की सर्वोच्च विधि व्रज की सुन्दरियों द्वारा अपनाई गई विधि है। ये सुन्दरियाँ (गोपियाँ) किसी भौतिक या आध्यात्मिक लाभ के उद्देश्य से रहित होकर कृष्ण से मात्र प्रेम करती थीं। भगवान् चैतन्य यह भी सीखाते हैं कि श्रीमद्भागवत दिव्य ज्ञान की निष्कलंक

कथा है और मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम विकसित करना है।

भगवान् चैतन्य की शिक्षाएँ सांख्य योग के आदि प्रवर्तक भगवान् कपिल द्वारा दी गई शिक्षाओं के समान हैं। यह प्रामाणिक योग-पद्धति भगवान् के दिव्य रूप का ध्यान करने की शिक्षा देती है। किसी शून्य या निराकार का ध्यान करने का प्रश्न ही नहीं उठता। जब योगासन के अभ्यास के बिना ही भगवान् विष्णु के दिव्य रूप का ध्यान किया जाता है, तब ऐसा ध्यान पूर्ण समाधि कहलाता है। इस प्रकार का ध्यान पूर्ण समाधि होता है, इसकी पुष्टि भगवद्गीता के छठे अध्याय के अन्त (6.47) में की गई है, जहाँ भगवान् कृष्ण कहते हैं कि सभी योगियों में से सर्वोत्तम योगी वह है, जो अपने हृदय में निरन्तर भगवान् का ध्यान प्रेम तथा भक्ति के साथ करता है।

भगवान् चैतन्य ने जनसमूह को अचिन्त्य-भेदाभेद-तत्त्वरूपी सांख्य दर्शन के आधार पर जिसमें परमेश्वर को उनकी सृष्टि से एक ही साथ एक और भिन्न माना जाता है, उपदेश दिया कि इस दर्शन का अभ्यास करने के लिए भगवान् के पवित्र नाम का जप एवं कीर्तन करना वही सबसे व्यावहारिक विधि है। उन्होंने शिक्षा दी कि भगवान् का पवित्र नाम भगवान् का शब्दावतार है और चूँकि भगवान् परम पूर्ण हैं, अतएव उनके पवित्र नाम एवं उनके दिव्य स्वरूप में कोई भेद नहीं है। इस प्रकार भगवान् का पवित्र नाम के जप के माध्यम से मनुष्य परमेश्वर का प्रत्यक्ष सान्निध्य प्राप्त कर सकता है। जो इस शब्द-ध्वनि का अभ्यास करता है, उसे विकास की तीन अवस्थाओं से होकर गुजरना होता है-अपराधयुक्त अवस्था, नामाभास अवस्था तथा शुद्धनाम की दिव्य अवस्था। जप की अपराधयुक्त अवस्था में सभी प्रकार के भौतिक सुखों की कामना बनी रहती है, किन्तु दूसरी अवस्था में समस्त भौतिक कल्मष से छुटकारा मिल जाता है। जब मनुष्य दिव्य अवस्था में स्थित

होता है, तब वह सर्वाधिक वाँछित पद प्राप्त करता है-भगवत्प्रेम की अवस्था। भगवान् चैतन्य ने शिक्षा दी कि मनुष्यों के लिए यही सर्वोच्च पूर्णता की अवस्था है।

योगाभ्यास का मुख्य उद्देश्य इन्द्रियों को नियन्त्रित करना है। समस्त इन्द्रियों का मूल केन्द्रीय नियन्त्रक है मन; अतएव सर्वप्रथम मन को कृष्णभावना में लगाकर उस पर नियन्त्रण प्राप्त करने का अभ्यास करना होगा। मन के स्थूल कार्यकलाप ज्ञानेन्द्रियों या कर्मेन्द्रियों के द्वारा अपनी इच्छा के अनुसार व्यक्त होते हैं। मन के सूक्ष्म कार्यों में सोचना, अनुभव करना तथा इच्छा करना सम्मिलित हैं, जो मनुष्य की चेतना के अनुसार सम्पन्न किये जाते हैं, चाहे वे कलुषित हों या निष्कलुष। यदि मनुष्य का मन कृष्ण (उनके नाम, गुण, रूप, लीला, पार्षद, साज-सामग्री यानी परिकर) पर स्थिर रहता है, तो उसके सारे सूक्ष्म एवं स्थूल कार्यकलाप अनुकूल होते हैं। भगवद्गीता में चेतना के मार्जन की जो विधि दी गई है, उसमें कृष्ण के दिव्य कार्यकलापों के गुणगान से मन को कृष्ण में स्थिर करना, उनके मन्दिर को बुहारना, उनके मन्दिर में जाना, भगवान् के अलंकृत दिव्य स्वरूप का दर्शन करना, उनकी दिव्य महिमाओं का श्रवण करना, उन्हें अर्पित भोजन को ग्रहण करना, उनके भक्तों की संगति करना, उन्हें अर्पित किये गये पुष्प तथा तुलसी-दल को सँघना, भगवान् के कार्यों में संलग्न होना, भक्तों के प्रति द्वेष करने वालों पर क्रुद्ध होना आदि सम्मिलित हैं। मन तथा इन्द्रियों के कार्यों को रोक पाना सम्भव नहीं है, किन्तु चेतना में परिवर्तन लाकर इन कार्यों को शुद्ध बनाया जा सकता है। इस परिवर्तन का संकेत भगवद्गीता में मिलता है, जहाँ कृष्ण अर्जुन को योग-विद्या बतलाते हैं, जिसके द्वारा मनुष्य कर्मों के फल के बिना कर्म कर सकता है, “हे पार्थ, जब तुम ऐसी बुद्धि से कर्म करोगे, तब तुम कर्मों के बन्धन से अपने आपको मुक्त कर सकते हो।” (भगवद्गीता 2.39) कभी कभी मनुष्य किसी परिस्थितिवश यथा व्याधि आदि के कारण इन्द्रियतृप्ति को सीमित कर देता है, किन्तु ऐसी सीमाएँ अल्प-ज्ञानियों के लिए हैं। मन तथा इन्द्रियों को नियन्त्रित करने की वास्तविक

विधि को जाने बिना अल्पज्ञ व्यक्ति मन तथा इन्द्रियों को बलात् रोकना चाहते हैं, किन्तु अन्ततः उनसे पराजित होकर इन्द्रियतृप्ति की धारा में बह जाते हैं।

योग के विधि-विधान का पालन, विभिन्न आसन एवं प्राणायाम, इन्द्रियों को इन्द्रिय-विषयों से हटाना इत्यादि उन लोगों के लिए हैं, जो देहात्म-बुद्धि में बुरी तरह से लिप्त हैं। कृष्णभावनामृत को प्राप्त बुद्धिमान पुरुष अपनी इन्द्रियों को कर्म करने से बलात् नहीं रोकता, प्रत्युत वह अपनी इन्द्रियों को कृष्ण की सेवा में लगाता है। एक बच्चे को निष्क्रिय होने के लिए बाध्य करके कोई उसे खेलने से रोक नहीं सकता, प्रत्युत बच्चे को बेहतर कार्यों में लगाकर उसे निरर्थक कार्यों में लगने से रोका जा सकता है। इसी प्रकार योग के आठ नियमों (अष्टांग योग) द्वारा इन्द्रिय कार्यों का बलपूर्वक निरोध तो निम्न कोटि के व्यक्तियों के लिए संस्तुत किया जाता है। कृष्णभावनामृत के श्रेष्ठ कार्यों में लगे रहने से श्रेष्ठ व्यक्ति इस भौतिक संसार के निम्न कार्यों से स्वतः दूर हो जाते हैं।

इस प्रकार भगवान् चैतन्य हमें कृष्णभावनामृत के विज्ञान की शिक्षा देते हैं। यह विज्ञान परम पूर्ण है। शुष्क मानसिक चिन्तक (ज्ञानी) अपने आपको भौतिक आसक्ति से रोकने का प्रयास करते हैं, किन्तु सामान्यतया ऐसा देखा जाता है कि मन को वश में कर पाना अत्यन्त कठिन होता है और वह उन्हें विषय-भोगों की ओर खींच ले जाता है। किन्तु कृष्णभानाभावित व्यक्ति के लिए यह खतरा नहीं रहता। अतः मनुष्य को अपने मन तथा इन्द्रियों को कृष्णभावनाभावित कार्यों में लगाना होता है और भगवान् चैतन्य हमें इसकी व्यावहारिक विधि की शिक्षा देते हैं।

संन्यास ग्रहण करने के पूर्व भगवान् चैतन्य विश्वम्भर नाम से विख्यात थे। विश्वम्भर शब्द का अर्थ है सारे ब्रह्माण्ड का पालन करने वाला तथा सारे जीवों को मार्गदर्शन कराने वाला। यही पालनकर्ता तथा मार्गदर्शक, मानवता को ये सारी दिव्य शिक्षाएँ प्रदान करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य के रूप में प्रकट हुए। भगवान् चैतन्य जीवन की मूल आवश्यकताओं के आदर्श शिक्षक हैं।

वे कृष्ण-प्रेम के सर्वश्रेष्ठ वदान्य दाता हैं। वे समस्त करुणा तथा सौभाग्य के पूर्ण आगार हैं। जैसी कि श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता, महाभारत तथा उपनिषदों में पुष्टि हुई है, वे साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् स्वयं कृष्ण हैं और इस कलहप्रिय युग में वे सबों के आराध्य हैं। उनके संकीर्तन आन्दोलन में हर कोई सम्मिलित हो सकता है। इसके लिए किसी पूर्व योग्यता की आवश्यकता नहीं होती। उनकी शिक्षाओं का पालन करने मात्र से ही कोई भी व्यक्ति पूर्ण मानव बन सकता है। यदि कोई मनुष्य इतना भाग्यशाली हो कि वह भगवान् श्री चैतन्य के द्वारा आकृष्ट होता है, तो उसे अपने जीवन-लक्ष्य में सफलता अवश्य प्राप्त होगी। दूसरे शब्दों में, जो लोग आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने में रुचि रखते हैं, वे भगवान् चैतन्य की कृपा से माया के बन्धन से सरलता से छूट सकते हैं। इस पुस्तक में प्रस्तुत उनकी शिक्षाएँ श्री चैतन्य भगवान् से अभिन्न हैं।

भौतिक शरीर में लिप्त रहकर बद्धजीव समस्त प्रकार के भौतिक कार्यों से इतिहास के पृष्ठों में वृद्धि करता रहता है। भगवान् चैतन्य की शिक्षाएँ मानव समाज को ऐसे व्यर्थ एवं क्षणिक कार्यों को रोकने में सहायता पहुँचा सकती हैं। इन शिक्षाओं से मानव आध्यात्मिक कार्यों के सर्वोच्च पद को प्राप्त कर सकता है जो भवबन्धन से मुक्ति पाने के बाद ही प्रारम्भ होते हैं। कृष्णभावनामृत में मुक्त अवस्था में किये जाने वाले ऐसे कार्य मानव पूर्णता के लक्ष्य के द्योतक हैं। भौतिक प्रकृति पर प्रभुता प्राप्त करने के प्रयास में मनुष्य जो मिथ्या प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, वह भ्रामक है। भगवान् चैतन्य की शिक्षाओं का अध्ययन करने से दिव्य ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और ऐसे ज्ञान से कोई भी आध्यात्मिक जगत् में उन्नति कर सकता है।

हर व्यक्ति को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। कोई भी व्यक्ति भौतिक प्रकृति के नियमों को रोक नहीं सकता, जो ऐसे कर्मों पर नियन्त्रण रखती है। जब तक मनुष्य सकाम कर्मों में लगा हुआ है, तब तक उसे जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयास में निराश होना पड़ेगा।

मुझे पूर्ण आशा है कि इस ग्रंथ श्रीचैतन्य-चरितामृत में वर्णित भगवान् चैतन्य की शिक्षाओं को हृदयंगम करने से मानव समाज को आध्यात्मिक जीवन का नवीन प्रकाश मिलेगा, जिससे शुद्ध आत्मा के लिए नवीन कर्मक्षेत्र खुल जायेगा।

ॐ तत्सत्

ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी

14 मार्च, 1968, चैतन्य महाप्रभु का जन्मदिन

श्री श्री राधा-कृष्ण मन्दिर, न्यूयॉर्क

भूमिका

श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित श्रीचैतन्य चरितामृत श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के जीवन तथा उपदेशों का मुख्य ग्रन्थ है। श्री चैतन्य महाप्रभु उस महान् सामाजिक तथा धार्मिक